



प्रकाशित: 6 नवम्बर 2017 को दैनिक जागरण में प्रकाशित -

अशक्त करता है अल्पसंख्यकवाद

हृदयनारायण दीक्षित

शब्द का स्पष्ट अर्थ जरूरी है। पतंजलि ने सम्यक अर्थ के अनुसार ही शब्द प्रयोग के निर्देश दिए हैं। दार्शनिक वाल्टेयर ने उचित बहस के लिए शब्द परिभाषा को अनिवार्य बताया है। कानून की व्याख्या में परिभाषाओं का ही महत्व है। भारतीय संविधान (अनुच्छेद 366) में प्रयुक्त 30 महत्वपूर्ण शब्द पदों की परिभाषाएं हैं। इस अनुच्छेद में सुस्पष्ट शब्दों पेंशन, उधार लेना, राज्य और रेल की भी परिभाषाएं हैं, लेकिन संविधान में महत्वपूर्ण रूप से उल्लिखित 'अल्पसंख्यक' शब्द की कोई परिभाषा नहीं है। किसी कानून में भी 'अल्पसंख्यक' सुपरिभाषित नहीं है। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 में बना था। इस कानून में कहा गया कि 'अल्पसंख्यक वह समुदाय है जो केंद्र सरकार अधिसूचित करे।' ऐसी पहचान के लिए अधिनियम में कोई मानक भी नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 29 व 30 के शीर्षक क्रमशः 'अल्पसंख्यक वर्गों के हित संरक्षण व शिक्षा संस्थाओं की स्थापना तथा संचालन' हैं। आश्चर्य है कि संविधान निर्माताओं ने ऐसी सुविधाएं देते समय भी 'अल्पसंख्यक' की परिभाषा नहीं दी। नतीजा सामने है। भारी संख्या के बावजूद मजहबी संप्रदाय अल्पसंख्यक हैं। अल्पसंख्यक होने की मांग लगातार बढ़ी है। राष्ट्र सर्वोपरि सांस्कृतिक व संवैधानिक संप्रभु सत्ता है। अल्पसंख्यक पहचान का विचार बहुत बाद में आया। माना गया कि युद्ध या किसी अंतरराष्ट्रीय करार के कारण किसी राष्ट्र क्षेत्र के निवासी जबरदस्ती दूसरे देश के निवासी हो जाते हैं। ऐसे लोगों की सहमति के बिना राज्य क्षेत्र में परिवर्तन से सभ्यता व संस्कृति प्रभावित होती है। उनकी सामूहिक अस्मिता को बनाए रखने के लिए स्वाभाविक ही उन्हें विशेष संरक्षण की जरूरत होती है। भारत विभाजन के समय तत्कालीन मुस्लिम लीग ने अपने लिए अलग देश मांगा। यहां शेष रहे मुस्लिमों ने अपनी इच्छा से भारत को चुना। यहां सभी नागरिकों को समान अधिकार हैं। अंतरराष्ट्रीय अर्थ में भारत में कोई अल्पसंख्यक नहीं है। मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में भी अल्पसंख्यकों के संबंध में कोई प्रावधान नहीं है, लेकिन नागरिक और राजनीतिक अधिकार अंतरराष्ट्रीय करार के अनुच्छेद 27 के अनुसार 'उन राज्यों में जिनमें जातीय, धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक हैं, ऐसे अल्पसंख्यक व्यक्तियों को अपने समूह के अन्य सदस्यों के साथ सम्मिलित होकर अपनी स्वयं की संस्कृति का आनंद लेने, अपने धर्म को मानने और उस पर आचरण करने या अपनी भाषा का प्रयोग करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा।' यह करार 1966 में लागू हुआ था, लेकिन भारत के संविधान निर्माताओं ने 1949 में ही अल्पसंख्यकों के संरक्षण का प्रावधान कर लिया था। आखिरकार 'अल्पसंख्यक' होने का अर्थ क्या है? क्या 51 प्रतिशत को बहुसंख्यक कहेंगे और 49 को अल्पसंख्यक? इस गणना का आधार क्या होगा? क्या धर्म, पंथ, मजहब या रिलीजन के आधार पर ही गणना करेंगे? क्या भाषा के आधार पर अल्पसंख्या या बहुसंख्या की पहचान करेंगे? मूलभूत

प्रश्न है कि किसी समूह विशेष को अल्पसंख्यक घोषित करने के मानक क्या हैं? आखिरकार 21वीं सदी के भारत में सभी नागरिकों को एक समान मौलिक अधिकार देने वाले राष्ट्र में भी कोई अल्पसंख्यक क्यों है? संप्रति आठ राज्यों में हिंदुओं को अल्पसंख्यक घोषित कराने की मांग वाली जनहित याचिका सर्वोच्च न्यायपीठ के विचार में है। यहां सवाल और भी हैं। क्या किसी पंथिक या मजहबी समुदाय की संख्या की गणना में भारत को ही इकाई माना जाए? या राज्यों को? पंथ या मजहब को ही अल्पसंख्या की गणना का आधार क्यों माना जाना चाहिए? भारतीय राष्ट्र राज्य ने उद्देशिका से लेकर सभी संवैधानिक प्रावधानों में प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार दिए हैं। तब अल्पसंख्यक होने का औचित्य क्या है? भारत की अल्पसंख्यक समस्या कट्टरपंथी सांप्रदायिकता से पैदा हुई। ब्रिटिश सत्ता ने इसे बढ़ाया। कम्यूनल अवॉर्ड इसी षड्यंत्र का परिणाम था। भारत टूट गया। संविधान निर्माता अल्पसंख्यक अलगाववाद की व्यथा में थे। संविधान सभा ने सरदार पटेल के सभापतित्व में 'अल्पसंख्यक अधिकार समिति' बनाई। संविधान सभा में पीसी देशमुख ने ठीक कहा था कि 'इतिहास में अल्पसंख्यक से अधिक क्रूरतापूर्ण और कोई शब्द नहीं है। इसी शैतान के कारण ही हमारा देश बंट गया। प्रसिद्ध विधिवेत्ता एमए आयोगर ने तुर्की के अल्पसंख्यकों के संरक्षण के संधिपत्र का उल्लेख किया कि गैर-मुसलमान तुर्की नागरिक भी मुसलमानों के समान ही नागरिक व राजनीतिक अधिकारों का उपभोग करें।' उन्होंने कहा, 'मैं अल्पसंख्यक शब्द को ही पसंद नहीं करता।' तुर्की ने एक समान अधिकार से काम चलाया। भारत विशेषाधिकार देकर भी भारी परेशानी में रहता है।

संविधान सबसे बड़ा मार्गदर्शी है। कायदे से देखा जाना चाहिए कि संविधान सभा क्या चाहती थी? उनके द्वारा स्थापित सिद्धांतों को लागू करना हमारा कर्तव्य है। संविधान सभा के उपाध्यक्ष एचसी मुखर्जी ने चेतावनी भरे लहजे में कहा था, 'यदि हम एक राष्ट्र चाहते हैं तो हम मजहब के आधार पर अल्पसंख्यक को मान्यता नहीं दे सकते।' बिल्कुल सही कहा था। भारत बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक करार का परिणाम नहीं है। यह संप्रभु संवैधानिक-सांस्कृतिक सत्ता है। सभा में तजम्मुल हसैन ने भी ठीक कहा था 'हम अल्पसंख्यक नहीं हैं। यह शब्द अंग्रेजों ने निकाला था, वे चले गए। अब इसे भी विदाई दी जाए।' संविधान निर्माता मजहबी अल्पसंख्यकवाद के विरुद्ध थे। पंथिक और मजहबी विशेषाधिकार दोधारी तलवार होते हैं। वे एक धार से सुविधाभोगी लोगों में अलगाववाद का विचार देते हैं और दूसरी धार से सुविधा न पाने वाली बहुसंख्या को भी उत्तेजित करते हैं। अनेक समूहों द्वारा अल्पसंख्यक सुविधा की सूची में शामिल होने की स्वाभाविक वृत्ति इसी का परिणाम है।

अल्पसंख्यक अधिकारों ने समता के मूल अधिकार का अतिक्रमण किया है। अनुच्छेद 15 में 'धर्म, मूलवंश जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेद का निषेध' है, लेकिन अल्पसंख्यक पहचान और विशेषाधिकार का आधार धर्म है। राजकोष से संचालित योजनाओं के लाभ में सबका समान अधिकार है, लेकिन अल्पसंख्यक पहचान के आधार पर अलग सुविधाएं हैं। अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाएं स्वायत्त हैं। उन्हें तमाम अतिरिक्त सुविधाएं हैं। केंद्र प्रतिवर्ष हजारों अल्पसंख्यक छात्रों के लिए भारी अनुदान देता है। पंथिक मजहबी कार्यों के लिए भी सब्सिडी है। ऐसी सुविधाओं के चलते शिक्षा संस्थान चलाने वाले अन्य संगठन भी अल्पसंख्यक वर्ग की मान्यता का प्रयास

करते हैं। गरीबों, पिछड़ों, दलितों, वंचितों और महिलाओं के लिए समाज कल्याण योजनाएं जरूरी हैं। पिछड़ों में अनेक मुस्लिम जातियां भी हैं। गरीब महिलाओं के लिए संचालित योजनाओं का लाभ भी सभी संप्रदायों को मिलता है। गरीबी और अभाव पंथिक या मजहबी नहीं होते। राष्ट्र राज्य का उद्देश्य 'सबका साथ सबका विकास' ही होना चाहिए। इसी उद्देश्य में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक हित भी सम्मिलित हैं।

[लेखक उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष हैं]